मनुष्य बनो

शरणागति, शुभ संकल्प,

क्षमा, प्रेम,

निष्काम कर्म, ब्रह्मचर्य पालन,

क

याल फकीर चन्दजी महारा

मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टि-कोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है। मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायगा।

४—किसी धर्म, पंथ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जाँय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ साफ अवश्य लिखना चाहिये। उत्तर के लिये जबावी कार्ड आना चाहिये वी० पी० पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायगी। इसका वार्षिक मूल्य ८—०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहां डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर मिले व अगला अङ्क निकलने से एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजने चाहिये। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ साफ लिखना चाहिये। और पते की तबदीली भी।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

R. S.

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मदुच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

❋ मनुष्य बनो ❋

वर्ष ३२	जेठ सं० २०३९ वि० मई, १९८२	संख्या ७

बिनती

गुरु तुम दीन दयाल हो, जगत पति स्वामी ।
तुम्हरे चरन सरोज में, शत बार नमामी ॥
दीन निबल के काज आप, प्रगट हुये आय ।
बूड़त लिया बचाय, शब्द की नाव चढ़ाय ॥
शब्द सुरत का भेद दिया, सत पन्थ चलाया ।
भटके जीव अनाथ को, मारग दिखलाया ॥
धन्य धन्य सुदयाल, धन्य आरत दुख हारन ।
धन्य धन्य प्रतिपाल, धन्य साँचे भव तारन ॥
नाम दान दे मेहर से, अपना कर लीजे ।
राधास्वामी कृपाल, चरन की भक्ति दीजे ॥

—०—

परम पूज्य पाठकगण 'मनुष्य बनो'

आज परम दयाल जी का शरीर हमारे बीच नहीं हैं, किन्तु उन का ज्ञान हम सबके साथ हैं। दास को भारत के महान सन्तों के चर्णों में जाने का अवसर मिला है। किन्तु शान्ति परमदयाल जी के चर्णों में ही मिली है। वह पूर्ण ज्ञान दाता थे। दास को उन्होंने नाम दान देकर सतसंगियों की सेवा का कार्य दिया है वह तन मन धन से जीवन में करूँगा। मुझे हजूर के १३७ पत्र प्राप्त हुए हैं वह 'मनुष्ग बनो' में छपेंगे। जो ज्ञान या अनुभव उन्होंने दिया है वह भी इसी में छपता रहेगा। सव भाई बहन 'मनुष्य बनो' की पूरी सेवा करें। हम सबको चाहिए कि हजूर का कार्य उन्हीं की भांति सचाई से करें। अहंकार न आने पाये तभी जगत कल्याण का कार्य सुलभ होगा। आशा है कि सब भाई बहिन इस नेक कार्य में पूर्ण सहयोग देंगे।

दासानुदास
दुर्गादास 'चमन'
गाँव व डा० टिहरी–१७६०३२
वाया ज्वालामुखी, जिला कांगड़ा
(हि० प्र०)

गुरु रूप

दुर्गादास 'चमन'

रे साधो गुरु रूप समझाऊँ
नाम दिया है जिसने वह है शब्द भण्डार।
शब्द प्रकट किया है उसने शब्द का है संसार।
रे साधो ....
शब्द नूर में वह है पूरा, शब्द का देता ज्ञान।
सामने करके शिष्य को प्यारे देता है पहचान।
रे साधो ....

शब्द नूर का साधन लेकर करले आप कमाई।
जिसने जाना मानुष गुरु को उसने मुँह की खाई।
रे साधो ....

नूर से सारी दुनियां उपजी नूर सभी की जान।
शब्द के अन्दर नूर है रहता बात यह मेरी मान।
जैसा तेरा मन का केन्द्र वैसी नूर कमाई।
बिन सतसंग ज्ञान न उपजे सुन ले मेरे भाई।
स्मरण, ध्यान भजन से ऊपर सहज भाव है प्यारे।
ज्ञान समाध लगाकर सजनो हो जाओगे न्यारे।
रहनी ज्ञान, ज्ञान है रहनी परम पुरुष से जानो।
साधन करके तन के अन्दर बात हमारी मानो।
निर्गुण सगुन नहीं है सत्गुरु यह है सच्चो बाणी।
अहंकार में द्वेतभाव है द्वेत में स्वना मानी।
मृष्टि अहंकार की सारी अहं को आज त्यागो।
सतगुरु की तुम शरण पकड़ लो अन्धकार में जागो।
चेतन भाव समाधी होगी कैसे उसे बताऊँ।
परम दयाल जी की कृपा से शब्द उन्हीं के गाऊँ।

—×—

शोक समाचार

पूज्य माता जी भन्डारो देवी ने ४–४–८२ को इस अपने नाशवान शरीर को त्याग कर जपने निज रूप में लीन हो गई है। आप हमेशा परमदयाल के साथ दौरे पर रहा करती थी। मालिक से कामना है कि उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे और उनके परिवार जनों एवं समस्त प्रेमी सतसंगी भाइयों को इस अपार दुख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

व्यवस्थापक

मानवता का पंथ

भाई अजब बना संसार
देख देख मोहे हँसी आवे रंग तेरे करतार।
पहले लड़ते हिन्दू मुस्लिम गाय सूअर आधार।
अब लड़ाई हिन्दू सिख में जो है इक परिवार।
हिन्दू पढ़ते गीता भगवत सिख साहिब दरबार।
समोऽहं सर्व भूतेषु यही है गीता सार।
एक नूर तें सब जग उपज्यौ सार साहिब दरबार।
धर्म पंथ कोई गलत नहीं है अच्छे देत विचार।
क्यों कर बने मन्दिर गुरुद्वारे सोचो मेरे यार।
सांच कहूँ तो कोई न माने झूठा जग व्यवहार।
मन की रचना सभी है यारो माया का विस्तार।
फकीर न माना मानव पन्थी कहता अर्ज गुजार।
मानवता के पंथ चलो जो इस युग में रखवार।

—मुन्शीराम भगत
३५८/१५-ए, चन्डीगढ़।

— × —

शोक समाचार

दुःख के साथ सूचित किया जाता है कि श्री नय्या जी हनमकुन्डा (आ० प्र०) निवासी, जो कुछ समय दयाल पत्रिका के कोषाधिकारी रहे थे वे १७-४-८२ को इस असार संसार को छोड़ निज रूप में लीन हो गये हैं। मालिक से कामना है कि वह उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे व उनके परिवार को इस दुःख को सहने की शक्ति प्रदान करे।

—व्यवस्थापक

— + —

(गतांश से आगे)

१३३७ ईसवी तक यही दशा रही। इस पर भी वह कब वि
की सुनने लगा था। एक लाख सैनिक फिर इकट्ठा किये
हिमालय की ओर से चीन पर विजय पाने के निमित्त चला।
चीन के राज्य के निकट पहुँची। चीनियों ने रास्ता रोक लिया। वह
लौटने लगे। कुछ तो वन और पर्वतों में नष्ट हो गये, शेष जो दिल्ली
पहुँचे बादशाह की आज्ञानुसार सब के सब मार डाले गये। पहिले
मुहम्मद तुगलक हृदय का इतना बुरा नहीं था परन्तु क्रमशः जिस
प्रकार उसका हठ बढ़ता गया वह निर्दयी और अत्याचारी होता
गया। दक्षिण का सूबेदार विद्रोही हो गया। बादशाह ने लड़ाई
में उसको पकड़ मंगवाया और जीते ही उसकी खाल खिचवा ली
गई।

एक बार उसका यह विचार हुआ कि देवगढ़ को अपनी राजधानी बनावे। आज्ञा दी गई कि सब लोग देवगढ़ में चल कर बस जांय और उसका नाम दौलताबाद रक्खा। दिल्ली निवासी बादशाह की आज्ञानुसार उस ओर चले परन्तु हजारों स्त्री, पुरुष और बालकों की मृत्यु मार्ग ही में हो गई। दौलताबाद तो बसा नहीं परन्तु दिल्ली उजड़ गई। मुल्तान का विद्रोह मिटाने के लिये सन् १३३० ई० में बादशाह दिल्ली आया। २ वर्ष वहां रहा और अपने कुटुम्बियों को हजारों मनुष्यों सहित दौलताबाद ले गया। यह मन के हाथों कुछ ऐसा बिक गया कि बुद्धि किंचित न रह गई थी। गंगा और यमुना के दुआबा मध्य के निवासियों को कृषि कार्य छोड़ने के कारण इसने जंगलों में भगा दिया और सबको निर्दयता और कठोरता से मार डाला। आश्चर्य की बात तो यह है कि इसने स्वयं हाथ में धनुष बाण लेकर बहुतों का शिकार किया था और उन सबकी मुण्डकाएँ दिल्ली के कंगूरों पर लटकाई गई थीं।

दक्खिन से लौटकर उसने आज्ञा दी कि जो मनुष्य चाहें दौलता-

बाद छोड़कर दिल्ली में जा बसें परन्तु इस समय में घोर काल (सूखा) पड़ा और लाखों मनुष्य काल के ग्रास हो गये।

इसको अपने मन की चेष्टाओं के बन्धन से कभी छुटकारा नहीं हुआ। न इसने किसी की बात मानी। अतएव इसके राज्य में कभी शान्ति नहीं हुई। दक्खिन तो एक दम स्वतंत्र हो गया। इसका हाल पाकर उसका अत्याचार और भी बढ़ गया।

इसके अत्याचार के वृतान्त इस प्रकार घृणित और शोचनीय हैं कि उनके कहने का जी नहीं चाहता। इसने २७ वर्ष तक राज्य किया और इस प्रकार अपनी प्रजा को दुःख दिया कि दिल्ली के इतिहास में इससे अधिक निर्दयी बादशाह और कोई नहीं मिलेगा।

यह केवल मन की आधीनता में रहने का परिणाम था और जो मनुष्य इस मन के जाल में फँस जाते हैं जीते जी फिर वह नहीं छूटते। सन् १३५१ ईसवीं में इसने बड़े पश्चाताप और दुःख के साथ जान दी।

—०—

दूसरा दृश्य

सौन्दर्य की मृग तृष्णा

जो सुन्दर हैं वह अपने सौन्दर्य का अभिमान करते हैं। जो सौन्दर्य उपासक हैं वह प्रायः भ्रम से धन सम्पत्ति का नाश कर जान भी अर्पण कर देते हैं। सौन्दर्य का मरुस्थल इस कारण कुछ कम भयानक व दुखदायी नहीं है। इस कारण उन मनुष्यों को जो इस जादू की छुरी द्वारा मारे जाने के संकट में हैं, परिचत कराना व चेता देना अनुचित न होगा।

सौन्दर्य की उपमा एक प्रकाशित जोति से दी जा सकती हैं जो

स्वयं तो देखते देखते मन्द पड़ जाती है और न जाने कितने
जन्तु कीड़े आदि उस पर बलिदान हो जाते हैं। जो इस सौन्दर्य
सुख व भोग का साधन समझते हैं वे अत्यन्त भूल पर हैं। उ
जीवन का परिणाम शोचनीय व दयायोग्य होता है।

किसी साधू की पुत्री बड़ी रूपवती थी। इसके अतिरिक्त वह बड़ी शुद्धाचरण धर्मात्मा व तपस्विनी भी थी। ईश्वर ने उत्तम बुद्धि विचारशाली हृदय प्रदान किया था। कई धनाड्य पुरुषों ने उसके संग विवाह करने का विचार प्रकट किया परन्तु उसने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया और अपना जीवन मालिक के स्मरण में व्यतीत करना चाहा। उस देश का राजा बड़ा न्यायी था। किसी धनाड्य पुरुष को भी उसके साथ अत्याचार करने का साहस नहीं होता था। राजा स्वयं उस साधू का श्रद्धालू था। इस कारण और भी, किसी को साहस नहीं हुआ कि उसकी पुत्री के लेने का प्रयत्न करें। बाप व बेटी दोनों अपने समय को मालिक की भक्ति में व्यतीत करते थे। धीरे धीरे उस देश के राजकुमार की दृष्टि उस पर पड़ गई। प्रेम ने उसे पागल बना दिया। कुछ दिनों तो वह ऐसे ही कुटियाँ के समीप चक्कर लगाता रहा। अन्त में न रहा गया, साधु के चरणों पर गिर कर उसे अपनी पुत्रता में स्वीकार करने की प्रार्थना की। साधू हक्का वक्का हो गया। कहां राजा कहां साधू ! उसने राजकुमार को संसार का ऊँचा नीचा समझाया परन्तु यह कब मानने लगा था। साधू बोला – "बेटे तू राजा है, लोग तुझे क्या कहेंगे। राजा से और भिखारी से क्या सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त यह भी संभव है कि साधू की पुत्री तेरे लिये ग्लानि व खेद का कारण बन जाय। एक और राजा ने इसी भाँति किया था। एक साधू की पुत्री से विवाह कर लिया था। अन्त में वह अत्यन्त दुखी हुआ। राजकुमार ने पूछा वह कहानी किस प्रकार की है, साधू ने उत्तर दिया कि "विन्ध्याचल के दक्खिन एक नदी के तट पर एक साधू रहता था। उसकी बेटी

बड़ी रूपवती था। साधू के संग वह भी भिक्षा मांगने जाया करती थी। उसका स्वभाव भीख मांगने का हो गया था। एक राजकुमार ने उसको देख लिया। वह तन मन अर्पण कर उस पर मोहित हो गया। साधू से कहा यह पुत्री मुझे दे दे, मैं इसको राज भवन में ले जाकर रानी बनाऊँगा। अन्धा क्या चाहे दो आँखें। साधु की बेटी राजा के घर जाय इससे उत्तम और क्या बात हो सकतीं थी। यह उसको घर ले गया। उसके साथ विवाह कर लिया और राज महल में रहने लगा, परन्तु उस पुत्री में एक अवगुण था। वह यह कि वह महल में किसी के सामने भोजन नहीं करती थी किन्तु एक अलग कोठरी में चारों ओर से किवाड़ें बन्द करके तब खाना खाती थी। सब लोग चकित थे, किसी को कुछ पता न लगता था। अन्त में राजा ने स्वयं इसके जानने का प्रयत्न किया। एक दिन वह शिकार खेलने का बहाना करके बाहर चला गया और फिर किसी प्रकार महल में आकर उस रानी के कोठे में दुबक रहा। जब नौकर चाकर उसका खाना लाये, रानी ने पहले किवाड़ें बन्द कर दिये फिर उचित स्थान पर आलों में भिन्न भिन्न स्थान पर भोजन को चुन कर एक आले के पास आई और कहा 'दाता कल्यान करे एक ग्रास साधुनी को भी दे दो और तुरन्त एक ग्रास मुख में डाल कर खा गई। फिर दूसरे आले के निकट आई और यही क्रिया कीऔर जब तक सारा भोजन भक्षण न कर गई इसी प्रकार मांग मांग कर बराबर खाती रही।' राजा चुपके-चुपके सब देखता रहा। उसके हृदय में बड़ी घृणा हुई। सोचने लगा–'यह मैंने क्या किया। साधुनी अपने प्राचीन स्वभाव को नहीं त्याग सकती। उसके संग विवाह करना अत्यन्त भूल थी।'

अब वह न तो रानी को घर से निकाल सकता था, न घर में रख सकता था। अन्त में उसको विष देकर मरवा दिया और इसी में अपने सम्मान व प्रतिष्ठा के बचाव का साधन समझा। इसी

प्रकार ऐ राजकुमार ! मैं साधू हूँ। मेरी पुत्री साधू की है तू उसके सौन्दर्य पर न जा, यह तेरी भूल है। इसका परिणाम अच्छा नहीं होता। प्रत्येक मनुष्य को अपनी पदवी व प्रतिष्ठा पर विशेष ध्यान देना चाहिये—"लायक ही सों कीजिये ब्याह बैर और प्रीति।" इसमें तेरे लिये हलकापन और हमारे लिये निर्लज्जता की बात है। साधू जन अपनी पुत्रियों को पटरानियां नहीं बनाते हैं, क्योंकि जंगलों की की रहने वाली राज महल के योग्य नहीं हुई हैं। साधू ने बहुत समझाया परन्तु राजकुमार ने एक नहीं सुनी। निदान उसने कहा मैं अपनी पुत्री से पूछ लूँ तब तुझको उत्तर दूँगा। राजकुमार इस पर सहमत हो गया।

साधू अपनी पुत्री के पास आया। पुत्री ने उत्तर दिया राजकुमार से पूछो वह मेरे साथ क्यों विवाह करना चाहता है। राजकुमार बोला तेरी सुन्दरता ने मुझे मुग्ध कर दिया है। पुत्री ने कहा आप कल प्रातःकाल पधारिये। मैं अपने सौन्दर्य का वास्तविक रूप दिखाऊँगी। यदि उस समय आप अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहे तो मैं निस्संदेह विवाह करूँगी परन्तु आज ही कई एक बड़ी नाँदें भेजवा दें। राजकुमार ने इसी भांति किया और अपने घर चला गया।

साधू की पुत्री ने क्या किया। उसी समय जमाल गोटा अधिकांश मात्रा में खा लिया। उसका पेट चलने लगा। कुल मिट्टी की नांदें उससे भर गईं। प्रातः काल हुआ राजकुमार को धैर्य्य कहां, अभी सूर्य भगवान का प्रतिबिम्ब भी नहीं दृश्य गोचर हुआ था कि यह साधु की कुटिया में आ पहुँचा। थोड़ी देर वृक्ष के नीचे बैठ कर सोचने का अवसर दिया गया। जब प्रकाश हुआ साधू की पुत्री ने उसको कुटिया में बुलाया और कहा मुझको देख और निर्णय कर कि तू अब मेरे संग विवाह करेगा या नहीं ? उसने ध्यान पूर्वक देखा आंखें घुसी हुईं। मुख और ललाट की शोभा हरी हुई, हाथ पांव ऐंठे

हुये, विचित्र दशा थी। उसने दृष्टि हटाली। पुत्री बोली—"आँख न न चुरा, मुझको देख और शीघ्र निर्णय कर।" उसने कहा—क्या तू वही पुत्री है जिसको मैंने कल इतनी रूपवती देखी थी। उसने कहा-मैं वही हूँ। उसने प्रश्न किया तेरी सुन्दरता कहाँ चली गई। उसने कहा चल मैं तुझको अपनी सुन्दरता दिखाऊँ। दोनों कुटिया के दूसरी ओर चले गये। परदा उठा दिया गया। कई नांद विष्ठा से भरी हुई देख पड़ीं जिससे दुगन्ध आ रही थी। यह बोली 'देख! यह वह सामग्री है, जिससे मेरी सुन्दरता बनी थी। मेरे मुख पर जो क्रान्ति थी वह पानी की थी, पानी में मिल गई। मेरे शरीर की मोटाई और कोमलता मिट्टी की थी वह मिट्टी में मिल गई। मुझको देख मैं तेरे विवाह के योग्य हूँ या नहीं? राजकुमार चुप! जिव्हा बन्द! एक शब्द भी मुख से नहीं निकला। चुपचाप खड़ा हुआ सोचने लगा साधु की पुत्री ने अवसर पाकर कहा—"जो बाहिरी सुन्दरता पर पर मोहित होकर उसके पीछे दौड़ते हैं उनकी दशा ऐसा ही होती है, जैसे मरुस्थल में पानी की चेष्टा कर मृग दौड़ता है और मर जाता है अथवा आग को कोई अच्छा पदार्थ जान कर कीड़े आदि आकर जल कर राख हो जाते हैं। जाता है जा! अब इस प्रकार की चेष्टा न करना। यह तुझको जीवन पर्यन्त स्मरण रहेगा। राजकुमार लज्जित होकर चला गया—

रज वीरज की कोठरी, ता परसा जो रूप।
सत्त नाम बिन डूब सी, कनक झामिनी कूप॥

यह कहानी अच्छी नहीं है, मनुष्य जन कहेंगे कि कैसी घृणित उपमा दी है परन्तु यहाँ अच्छी और घृणित से काम नहीं। इसमें तो केवल आशय की ओर ध्यान दिलाने की चेष्टा की गई हैं और वह इस दृष्टि से घृणित नहीं है।

सौन्दर्य दुधारी छुरी है जो एक ओर भूले हुये चाहने वालों को मार देती है। दूसरी ओर जिसमें सुन्दरता है वह भी कलह क्लेश से

नहीं बचने पाता। इसलिये क्या यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य इ
बचकर रहे और इसके फन्दे में न फँसें।

—०—

नूरजहां का वृतान्त

नूरजहां अत्यन्त रूपवती स्त्री थी। इसका पिता भारत वर्ष में अकबर के समय में आया और किसी प्रकार इसकी स्त्री राज भवन में आने जाने लगी। अभी यह बच्ची ही थी जिस समय वहाँ आई थी। इसका असली नाम मेहरुलनिसा था। महल की बेगमें इसको देख कर कहा करती थीं कि कौन जाने यह बिजली किसके ऊपर गिरेगी।

एक दिन की बात है, शाहजादा सलीम की आँख उससे लड़ गई और उसने उसके साथ असभ्य व्यवहार करना चाहा। मेहुरूलनिसा की माता ने बादशाह की बेगम से शिकायत की। उसने अकबर से कहा। बादशाह ने बेटे को बुलाकर डाँटा—'यह क्या उत्पात है भले मानुष ऐसा नहीं करते।" परन्तु सलीम कब मानने लगा था। अन्त में कोई युक्ति न समझ बादशाह ने मेहरुलनिसा का ब्याह अली कली खां के साथ करा दिया, जो पीछे शेर (सिंह) मारने के कारण शेर अफगन के नाम से प्रसिद्ध हुआ था और उसको ढाका का सूबेदार कर दिया।

मेहरूलनिसा उसके संग चली गई, परन्तु सलीम जी ही जी में बहुत कुढ़ता था। जब अकबर मरा और वह जहांगीर के नाम से राजसिंहासन पर बैठा, मेहरूलनिशा को राजभवन में लाने की चेष्टा से बेचारे शेर अफंगन को जान से मरवा डाला और मेहरूलनिसा को राजभवन में लाकर उसका नाम नूरजहाँ रक्खा और वह इसी नाम

से इतिहास में प्रसिद्ध है।

जहाँगीर नूरजहां के सौंदर्य पर मरता था। क्षण भर का भी वियोग नहीं चाहता था। नूरजहाँ जानती थी कि वह उसके सौन्दर्य के कारण जान दे रहा है, इसलिये वह दिन प्रतिदिन अपने सौन्दर्य के बढ़ाने में लगी रहती थी और बादशाह को अपनी मुट्ठी में कर रक्खा था।

जहाँगीर की और भी बेगमें थी जिनकी ओर से नूरजहाँ ने बादशाह के चित्त को फेर दिया था। नूरजहां के कारण गृह-कार्य में क्या क्या कठिनाइयां उपस्थित हुईं उनका वर्णन करना व्यर्थ है। है। बाप बेटे लड़ गये, शाहजहाँ मारा-मारा फिरा। राज्य-कर्मचारी भी उसके अधिकार को अत्यन्त अनुचित समझते थे। यहाँ तक कि महावत खां ने पांच हजार राजपूतों की सहायता से बादशाह को शासन-काल में ही एक प्रकार से कैद कर दिया।

एक बार तो नूरजहां के प्राणदण्ड के आज्ञा पत्र पर उसके हस्ताक्षर तक करवा लिये थे, परन्तु नूरजहां बड़ी बुद्धमती थी। जानती थी कि बादशाह जब मुझको देखेगा प्रतिज्ञादि भूल जायेगा और ऐसा ही हुआ। जब अन्तिम भेंट से वह बादशाह के पास चली आई, जहांगीर के आँसू निकल पड़े और महावत खाँ से विनय आग्रह द्वारा उसको प्राणदण्ड से बचा लिया और नूरहजां ने फिर उसके हृदय पर अपना सिक्का जमा लिया।

नूरजहां का सारा जीवन इसी प्रकार के षडयन्त्रों में व्यतीत हुआ और उसको सुख शान्ति प्राप्त नहीं हुई। अन्त में जिस समय जहांगीर ने प्राण त्याग किये नूरजहां के अधिकार का फन्दा सदैव के लिये कट गया। उसकी दृष्टि में सारा संसार अन्धकारमय हो गया। बहुत कुछ विलाप किया परन्तु क्या हो सकता था। उसने अपने भाई आसफजाँह से सहायता लेनी चाही। वह स्वयं अपने घात में था। बहिन को कैद कर लिया और और आज्ञा दी –"कोई

उससे मिलने न पावे, बरियार का ठेंगा सिर पर" अनेकों किये कि इस बन्दीग्रह से छूटे परन्तु कुछ वश न चला। अन्त म अपने भाग्यवश रहने ही में कुशल जान पड़ी।

जाहजहां इससे अत्यन्त घृणा करता था, यद्यपि उसे अन्तिम आयु में पच्चीस लाख रुपया वार्षिक वेतन रूप में नियत कर दिये थे और प्रकट रूप से उसका सम्मान भी बहुत करता था परन्तु इसको स्वीकार नहीं था कि लाहोर के शाहदरा प्रतिष्ठित स्थान में ऐसी जगह उसका मकबरा (समाधि) बनाया गया जो जंगलों से घिरा था और बिलकुल साधारण था।

नूरजहां के अन्तिम जीवन का अनुमान कौन कर सकता है वह शोक और निराशा की साक्षात् मूर्ति थी। पति के मरने के पश्चात् बारह वर्ष तक जीवित रही। कभी रंगीन वस्त्र नहीं धारण किये यह समय एकान्त में व्यतीत हुआ। जब मरने लगी यह वसीअत कर गई कि मेरी ससाधि पर यह शैर (पद्य) लिखा देना जिसका भावार्थ यह है :—

हम दीनों के समाधि (मकबरा) पर न दीपक हैं न फूल हैं।
न परवाने (कीड़े) जलते हैं न बुलबुल ही चह चहाते हैं।

इस एक पद्य से उसके शोक, निराशा व दुर्भाग्य का अनुमा किया जा सकता है। उसका मकबरा अब तक बना हुआ है औ उस पर यह शैर लिखा हुआ है। मकबरा बिलकुल नष्ट हो गया थ परन्तु हिन्दू मुसलमानों ने चन्दा करके इसको सुधरवा दिया था—

यह एक अत्यन्त रूपवती स्त्री की जीवन चर्य्या है। क्रमशः

—०—

प्रवचन

सत्संग परम दयाल फकीर चन्द जी महाराज

मानवता मन्दिर होशियारपुर

५-७-८१

मैं अब सत्संग कराने के योग्य नहीं रहा। क्यों ? क्योंकि यात्रा
ं चलता २ ऐसे स्थान पर पहुँच रहा हूँ यहाँ न गुरु है, न शिष्य है,
स्वामी है न चेला है। जब वह समझ आ जाती है फिर सत्संग
ौन कराये। जीवन किसी खोज में निकला था। भाग्य राधास्वामी
ात मे ले आया। इस मत में गुरू महिमा गाई हुई है। दाता ने नाम
ान दिया, अतः अभ्यास करता हुआ चला आ रहा हूँ। अब कहाँ
ुँचा ? जो मंजिल राधास्वामी दयाल ने व कबीर साहिब ने कही
वहां पहुँच रहा हूँ। जेठ महीने में वह बताते है कि हमें कहाँ
ना है ?

वहाँ न सत्तनाम न नाम न अनामी।

कबीर साहिब ने कहा हैं :—

यहाँ पुरुष तहाँ कछु नाहिं कहै कबीर हम जाना।
हमरी सैना जो कोई समझे, पावे पद निर्वाना॥

जब तबीयत वहां चली गई तो शेष सब समाप्त हो
। अब तो गले पड़ा ढोल बजाता हूँ। ऊपर तो कहना सुनना
नहीं। न बोलता है, न चलता है, खामोशी है, चुप है, परम सुख
ान्ति है, यहाँ हमने जाना है। आप लोग आ जाते है। आपको
आकर क्या कहना चाहता हूँ। मालूम नहीं सन्तों का कोई और
होगा। मुझे पता नहीं। मुझे जो कुछ मिला मैं वह कहता हूँ।
को जीवन का अनुभव बताता हूँ कि जितना जीवन का झगड़ा
ुमारा सुख-दुख, नेकी-वदी, पाप-पुण्य यह सब हमारे मन का

है। अगर कोई व्यक्ति मन को काबू कर ले तो उसके जीव सम्पूर्ण दुःख दूर हो सकते हैं और जब तक व्यक्ति मन से परे नहीं जाता वह लाख प्रयत्न करे, लाख धर्म करे, लाख कर्म करे। दुख-सुख से वह बच नहीं सकता। गर्जेकि हमारे दुःखों व सुखों का, जन्म-मरण का सारा कारण हमारा मन है। अतः मन को सम्भालना अत्यावश्यक वस्तु है।

मैं मन के चक्कर में बुरी तरह आया हुआ था। केवल इस एक ख्याल ने कि मेरा रूप लोगों के अन्दर प्रकट होकर उनकी सहागता करता है और मैं नहीं होता। मैं किसी के अन्दर नहीं जाता और न ही मुझे पता होता है मुझे मन के रूप को सोचने व समझने के लिए विवश किया व मन से बचा कर मेरे जीवन का तख्ता बदल दिया। और अब मैं ऊँचा चढ़ गया तो यह समाप्त हो गया। मैं अब जैसे कैदी कैद में घसीटा जा रहा ऐसे बोल रहा हूँ। मन नहीं करता। क्योंकि मन से ऊपर चला गया हूँ। जब मन ही न रहा तो बोलेगा कौन, क्या कहेगा और किसी को क्या बोलेगा। कबीर साहिब की वाणी है :—

मन को मारूँ पटक कर टूक २ हो जाय,
विष की क्यारी बोय कर लुन्ना क्यों पछताय।
यह मन फटक पछोर ले, सब आपा मिट जाय,
बगुला होय पिव पिव करे, ताको काल न खाय।

मन व माया का रूप समझ में आने से कि मानव के अपने मन के अन्तर जो कुछ फुरता है यह उसकी अपनी ही आत्मा है अर्थात उसके जिस प्रकार के कर्म है उसको जिस प्रकार के ख्यालात व विचार मिले हुये है उस प्रकार की बातें उसके अन्तर होती है। इसका विश्वास होने से मेरी आंखें खुली और मैं मन रूपी चक्कर से निकल सका। अभी मन में रहता तो हूँ मगर मन अब मुझे मारता नहीं। यह जो तुम्हारा मन है यही गुरु है, यह शिष्य है। यही सब

कृछ करता है। किसी के अन्तर राम प्रकट हुआ, कृष्ण प्रकट हो गया या कोई गुरु प्रकट हो गया कोई देवी आ गई। हम समझते हैं कि वह बाहर से आये। वो बाहर से कोई नहीं आता और हम सांसारिक लोग इस प्रकार के चमत्कार देख कर इसी एक भ्रम में आकर मूर्ख बन कर संसार में लुट गये। तथा इस मन रूपी चक्कर में आकर भिन्न २ धर्मों व पंथों में बंटे हुये हैं व दुःख सुख उठाते हैं। जितने चमत्कार है सब सूक्ष्म प्रकृति की समझ नहीं रखते इसलिए वह उसे चमत्कार कह देते हैं।

परसों में कर्नाटक का Radio सुन रहा था। एक सत पुरेन्द्र नामी है उसकी बावत कहानी थी। वो वह दुकानदार था उसकी पत्नी बड़ी धर्मात्मा थी। कोई ब्राह्मण भिक्षा के लिए आया कि मेरी लड़की की शादी है मैं बहुत दुःखी हूं। मुझे कुछ दे दो। उस स्त्री के पास और तो कुछ नहीं था अतः उसने अपने नथ (नाक का गहना) उस ब्राह्मण को दे दी। और वह ब्राह्मण उसी स्त्री का पति जो दुकानदार था उस दुकान पर गया कि यह नथ (नाक का गहना) ले ले तथा लड़की की शादी के लिए कपड़े दे दे। अब जब उसने उस (नाक का गहना) को देखा तो उसने उस गहने को पहचान लिया। उसने कहा—तू बैठ। वह स्त्री के पास गया तथा उसने उससे नथ के बारे पूछा ? स्त्री घबराई। उसने कहा—मैं ला देती हूँ। वह अपने कमरे में गई उसने कहा—नथ तो मेरे पास नहीं है तो क्या पति के सामने मेरी बेजती होगी। उसने विष धोला और पीने लगी। उसकी नथ उस कटोरी में आ गई। उसने नथ लेकर उसको दे दी। अब वह बड़ा हैरान हुआ। उसने जाकर वहां देखा कि जहाँ वह सन्दूकची में नथ रख कर गया था वहाँ नथ नहीं थो। जब से उसको यह ज्ञान हो गया, साधु हो गया, महात्मा हो गया, गृहस्थ छोड़ दिया। जो कुछ पास था दान में दे दिया। फिर उसने प्रचार करना प्रारम्भ किया। अब मैं सोचता हूँ कि क्या यह ठीक है ? मानव के

विचार में बड़ी भारी शक्ति है। हमारा मन ही हमारा रक्षक और हमारा मन ही भक्षक है। जो कुछ है तुम्हारा अपना मन है जो व्यक्ति इस मन को काबू कर लेता है वह इस संसार में सर्व होता है मगर मन को काबू करने का क्या इलाज है ? यह एक प्रश्न है। मैंने जो इलाज किया मैं वह बता सकता हूँ। शायद आप लोगों के लिए पूरा न हो। मैं सारा जीवन मन के साथ जूझा। कभी मैंने मन को मारा और कभी मन ने मुझ पर सवारी की। मन का रूप समझ में आने से मेरा मन काबू में आया। अर्थात केवल एक विश्वास से कि मेरे मन के अन्तर जितनी शक्लें व विचार बनते है यह बाहर से नहीं आते यह मेरे अपने ही मन के संस्कार व ख्यालात हैं। अत: इस समझ से जब भी मेरे मन से कोई गन्दा या बुरा ख्याल निकलता है तो मैं उसे केवल सूक्ष्म प्रकृति समझ लेता हूँ। इसी विचार से मेरा जीवन बना। मैंने यह समझा। आप लोग मन को कैसे काबू कर सकते हैं मैं यह नहीं जानता मन को काबू करना सरल नहीं है और शायद यह काबू होता भी नहीं है और न ही मन कभी मरता है, केवल मन को ऐसी जगह (मत्थे के बीच के स्थान से ऊपर) ले जाओ। जो कि ख्यालात से ऊपर हैं। जब तक मन इस जगह से ऊपर नहीं जायेगा यह अपना अच्छा या बुरा खेल अवश्य करता रहेगा। अत: यह साधन और अभ्यास किया जाता है।

जो कुछ मैंने समझा कि मैं कैसे ऊपर गया। यही कबीर साहिब ने समझा है। वह कहते हैं कि कोई भी व्यक्ति किसी अवस्था में भी इस मन से पार नहीं जा सकता। लाख प्रयत्न करे उसका मन काबू में नहीं आजेगा। जब तक उसको यह ज्ञान नहीं कि जो कुछ इसके मन के अन्दर फुरना फुरती है यह कल्पित है और माया है। यह मेरा अनुभव था और चूंकि यही अनुभव कबीर साहिब ने भी निम्नलिखित शब्द में कह दिया इसलिये मुझे हौंसला हो गया। मेरे मन ने मुझको बहुत तंग किया हुआ है। मैं जानता हूँ कि मेरे मन ने

मेरे साथ क्या किया हुआ है।

साधो यह मन है बड़ा जालिम।
जा को मन से काम परो है,
तिसको ही है मालुम।
मन कारन जो उनकी छाया,
तेहि छाया में अटके।
निरगुन सरगुन मन की बाजी,
खरे सयाने भटके।

मन ही चौदह लोक बनाया, पांच तत्त गुन कीन्हे,
तीन लोक जीवन बस कीन्हे, परै न काहू चीन्हे।
जो कोउ कहै हम मन को मारा, जा के रूप न रेखा,
छिन छिन में कितनौं रँग ल्यावै, जे सपनेहु नहिं देखा।
रसातल इकइस ब्रह्मांडा, सब पर अटल चलावै,
षट रस में भोगी मन राजा, सो कैसे कै पावै।
सब के ऊपर नाम निहच्छर, तहँ लै मन को राखै,
तब मन की गति जान परै यह, सत कबीर मुख भाखै।

तुमको जीवन का क्रियात्मक अनुभव बताता हूं। ताकि तुम अपने जन्म को बना सको। यह मन जालिम कैसे है? देखो, थोड़ा सा विचार आ जाता है, कोई चिन्ता आ जाती है जिससे सारी रात व्यक्ति को नोंद नहीं आती क्योंकि विचार सताता रहता है। हाय! यह क्या हुआ, हाय! यह क्या हुआ। यह कठिनाई रहती है तो फिर काबू कैसे आयेगा? मन के अन्दर से जो ख्यालात उठते हैं जब तक इन्सान इनको सत्य मानता रहेगा मन को काबू नहीं कर सकता बहुत सच्ची और ऊँची बात है। मेरे साथ बीती हुई है। हालांकि मैं सब कुछ जानता भी हूँ फिर भी किसी समय शक्लें या ख्यालात मेरे सामने आते रहते है जानता हूँ कि यह माया के सिवाय कुछ भी

नहीं। स्वप्न समान केवल संस्कार अर्थात् Suggestions & Impressions है जो मन पर पड़े हुये हैं। वास्तविकता कुछ और है जो इससे परे है। मगर फिर भी वो आते हैं रुकते नहीं। थोड़े से हालात में पैदा हो जाते हैं, कोई बात मन्दिर की हो या अपने घर की हो आ जाती है या किसी समय तुमको ऐसा दुःख आ जाता है वो ख्यालात बार २ आते है और बार २ तुम्हारा मन तुमको सताता है। झगड़े विचार करता रहता है। मेरे पर भी आता है। यह क्रियात्मक पहलू का जिक्र है। फिर क्या करता हूँ? फिर कैसे काटता व गँवाता हूँ? कब इनसे छुटकारा कब मिलता है? अपने कन को छोड़ कर ऊपर ध्यान ले जाता हूँ। सुरत को त्रिकुटी के साथ ऊपर ऊँचे ले जाता हूँ तब मुझे छुटकारा व शान्ति मिलती है। मैंने प्रण किया था कि अपना अनुभव कह जायेगा। जो मैंने अपने में अनुभव किया यह वो सच्चाई है।

मैंने लाख प्रयत्न किये कि मन मेरे काबू में रहे आनन्द ले, खुशियां ले। लेकिन ऐसा समय आया जब गिरा। सारा जीवन इसी समस्या से संघर्ष करया रहा। आखिर जब से मन के रूप का सच्चा ज्ञान मिला तब मेरे अन्दर जो चाह थी या जिसके लिए मैं भागा करता था, जिसके लिए मैंने गुरु किया तथा तपस्या की, यह किया वो किया। तब उसका निर्णय हुआ। तुम भी इस मन के चहकर में आये हुये हो। प्रत्येक व्यक्ति आया हुआ है। मैं चाहता हूँ कि तुम्हारी आंख खुले। किसी को तो यह ज्ञान भी नहीं है कि मन से परे भी कोई वस्तु है या नहीं।

मानव के मन के अन्दर या हमारी बुद्धि में किसी वस्तु की खोज है। सब इस खोज में फिरते है समझते है कि वह बाहर से मिलती है। इन्सान की खोज तो तब समाप्त होगी जब मानव का मन समाप्त हो जायेगा।

अगर बात समझ में आ जाये अर्थात मन का रूप समझ में आ

जाये तो अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं बात तो केवल मन के ख्यालात को रोकना और मन की लहरों में न फंसना है। जब तक मन मौजूद है तो ज्यादा परिश्रम की आवश्यकता नहीं। इसके साथ यह खोज कभी भी समाप्त नहीं होगी। तो सन्तों ने इसका इलाज यह बताया कि दसवें द्वार से आगे जाओ अर्थात मन को छोड़ जाओ लेकिन जब तक मन इकट्ठा नहीं होगा तब तक मन से आगे कैसे जाओगे। अतः इसका उपाय सुमिरन, ध्यान व भजन से अपने अन्दर ही मन को इकट्ठा करना है। यही सुमिरन, ध्यान व भजन का उद्देश्य है। अब प्रश्न यह है कि यह खोज क्यों होती है ? मन विषय-विकार कमाने व लूटने या सांसारिक इच्छाओं में फंसने के कारण गन्दा व निर्बल हो जाता है। कभी वह चाहता है और जो वस्तु जितनी निर्बल है उतनी गति व खोज अधिक करती है। उसे यह समझ नहीं आती है कि जो कुछ है मेरे मन के अन्दर है। प्रेम में देना होता है। प्रेमी अपने प्रियतम को सब कुछ देना चाहता है बल्कि माँगता नहीं। क्योंकि मांगने वाला भिखारी होता है। जो बाहर में अर्पित करता है वह अन्दर जाता है और उसको ही तकाऊ मिलता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आत्मा की ही खोज करता है।

मन को मारूँ पटक कर, टूक २ हो जाये,
विष की क्यारी बोय कर, लुन्ता क्यों पछताय।

विष की क्यारी क्या है ? गन्दे ख्याल व विचार या बुरी आशायें रखना। तुम बुरी आशायें रखोगे तो बुरे हो जाओगे और यदि अच्छी आशायें रखोगे तो अच्छे हो जाओगे।

यह मन ठीक निहोड़ ले सब आपा मिट जाय,
पिंगला होय पीऊ २ करे ताको काल न खाय।

यह परमार्थ है। पीऊ २ करना क्या है ? अपने घर जाने की प्रबल चाह रखना अर्थात मन से ऊपर जाना। मैंने यह चाह रखी थी और अब मैं पहुँच गया। गो वहाँ ठहरा नहीं जाता। मुझे अनुभव

हो गया। मिला क्या ? क्या मैं कुछ बन गया। केवल मस्तिष्क में जो विचार था कि परमात्मा क्या है ? यह क्या है ? वह क्या है ? यह सब समाप्त हो गया। और जब वहाँ पहुंच जाता हूँ तो बोलने को मन नहीं करता। अतः क्या बोलूँ। अब बड़ी कठिनता से नीचे आकर बोल रहा हूं।

मन पांचों के वश पड़ा, मन के वश नहीं पांच।
जित देखूँ तित दौं लगी, जित भागूँ तित आंच।

जिनके अन्दर गन्दे ख्यालात आते हैं उसी में हम फँसे हुए हैं। जिधर जाओ मन ही मन है जो तंग करता है।

कबीर बैरी सबल है एक जीव रिपु पांच।
अपने २ स्वाद को बहुत नचावै नाच।

यह परमार्थ है। जो व्यक्ति इस संसार से निकलना चाहते हैं सन्तों की शिक्षा उनके लिये है —

कबीर मत तो एक है भावै तहाँ लगाय।
भावै गुरु की भक्ति कर, भावै विषय कमाय।

अब इन वाणियों ने हमको पागल किया हुआ है। कहते हैं गुरु की भक्ति करो। हम लोग सारा जीवन बस गुरु के चरण में बैठकर उसके पाँव धोकर पीते २ मर गये। गुरू की भक्ति क्या है ? गुरु के सतसंग में जाकर जो वह बात कहता है, उस बात को समझ कर उस पर अमल करना गुरु की भक्ति है। तुम लोगों को हम गुरुओं ने सच्ची बात नहीं बताई बल्कि तुम लोगों को अपने जाल में फँसाने का प्रयत्न किया है कि आते रहो तथा हर महीने वेतन का दसवां भाग देते रहो अतः हम लोगों ने गुरुआई की है। भक्ति क्या है ? गुरु समझ, ज्ञान व विवेक का नाम है। सतसंग में जाकर गुरु की बात को सुनो, बात को सुनकर, समझकर उस पर अमल करो तभी तुम गुरु भक्त हो सकते हो और तभी तुम्हारा बेड़ा पार होगा। रुपया देने से तुम गुरु भक्त नहीं बन सकते। यह तो केवल सांसारिक

व्यवहार है। मैं यह स्पष्ट क्यों कहता हूँ ताकि मेरा आत्मा पर गुरु बनने का कोई पाप न आये। मैं आप लोगों को किसी प्रकार के धोखे में नहीं रखना चाहता।

मन के मारे बन गये, बन तज बस्ती माह,
कहें कबीर क्या कीजिए, यह मन ठहरे नांह।
तीन लोक चोरी भई, सबका धन हर लीन्ह।
बिना सीस का चोखा, पड़ा न काहूँ चीन्ह।

तीन लोक में चारी होना क्या है ? शरीर की रहनी, मन की शान्ति और आत्मा की शान्ति का खोया जाना यह तीन लोक में चोरी होना है। यह क्यों होतो है ? क्योंकि हमारे अन्दर भिन्न २ प्रकार के ख्याल होते हैं। जो हमें शान्ति नहीं लेने देते। यह शान्ति कौन ले गया ? जो हमारे मन के ख्यालात थे वह हमारे काबू में नहीं थे। उन्होंने हमें अशान्त कर दिया।

कबीर यह मन मरखरा, कहूँ तो मानै रोस।
जा मारग साहिब मिले, ताहे न चाले कोस।

जरा अपने मन को तो देखो कि क्या होता है ? तुम्हारे मन के साथ क्या होता है ? अपने मन को देखा करो।

मन मुरीद संसार है, गुरु मुरीद कोई साध।
जो मानै गुरु वचन को ताका मता अगाध।

मैंने जो गुरु भक्ति कही वही कबीर साहिब ने कह दी। केवल व्याख्यान करने का ढंग भिन्न है। कहते हैं कि जो गुरु के वचन को मानता है वह गुरु भक्ति है केवल मत्था टेकने वाला गुरु भक्त नहीं है।

जैसी लहर समुद्र की तैसी मन की दौड़।
सहजे हीरा नीपजे जो मन आवे ठोर।

जितना झगड़ा है इस मन का है। इस मन को इकट्ठा करना है। मन पर काबू पाना है। क्योंकि मन हर समय तरह २ के विचार

उठता रहता है इसलिये संतों ने इसको अच्छे ख्याल व सुमिरन ध्यान बताया है ताकि तुम्हारा मन ऊटपटांग न सोचता रहे। केवल मन को काबू करने के लिए सुमिरन और ध्यान है। इसका कोई और अर्थ नहीं।

दौड़त दौड़त दौड़या, जहाँ लग मन की दौड़।
दौड़ थके मन थिर गया, वस्तु ठौर की ठौर।

मैं बहुत दौड़ा। दौड़ २ कर थक गया। शान्ति मिल गई। अब साँप मर गया है मगर दुम हिलती है। अब चले चलाओ का समय है। अब सतसंग कराने को भी दिल नहीं चाहता। क्या बोलूँ बहुत कहा। अपना कर्म भोगा। दाता की आज्ञा मानता हूँ। आप आते हैं तो अपना कर्तव्य पूरा करता हूँ कि ऐ मानव ! जो कुछ है तेरे अपने ही मन को काबू करने में है। गुरु का काम सच्ची बात बताना ज्ञान अतः सच्ची बात बता चला।

पहले यह मन काग था करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुन २ खात।
कबीर मन सरपत था अब मैं पाया जान।
ताकी लागि प्रेम की निकसत कंचन खान।

इस मन को प्रेम दो, सच्चाई दो, यह मन तुम्हारे लिए लाभ-दायक हो जायेगा वरना यही मन हानिकारक हो जायेगा।

अगम पन्थ मन थिर करे, बुद्धी करे प्रवेश।
तन मन सब ही छोड़कर, तब पहुँचे वा देश।

यही कबीर साहिब कहते हैं कि जब उस देश में चले जाओगे मन नहीं रहेगा। अब समाधि में था, वहाँ से उठकर बोलने को मन नहीं था। क्या बोलूँ, क्या कहूँ मन को Watch किया करो कि यह सारा दिन क्या सोचता रहता है। अगर प्रतिदिन की बुराइयों की परवाह नहीं करोगे तो वो बुराइयाँ बढ़ती जाती हैं। अतः अपनी त्रुटियों को प्रतिदिन और एकान्त में बैठकर सोचो। और दूसरे दिन

उनको विचारने का प्रयत्न करो। एक रूप मान लो उसको पूर्ण मानो। प्रातः सायं मन को एकाग्र करके रूप बनाया करो व नाम माला सुमिरन करो। इससे तुम्हारी वृत्ति बलवान हो जायेगी। जो तुम्हारे Sub-Conscious mind में इच्छा होगी वो पूरी होगी अगर न हो तो मैं जुम्मेदार हूं। प्रबल इच्छा रखो, मिल जायेगा तथा वैसे बन जाओगे। ध्यान करने वाला जो कुछ चाहे वो ले सकता है। ध्यान में इतनी शक्ति है। ऐसा करके देखो, आजमा कर देखो। सफल हो जाओ तो दूसरे को ऐसा बताओ कि ऐसा किया करो। जो कुछ है तुम्हारे ध्यान और प्रेम में हैं। वह गुरु व वह शक्ति तुम्हारे अन्तर रहती है जितना प्रेम करो उतना लाभ होगा। जितना भी खेल है सब तुम्हारे विश्वास का है।

कोई गुरु तुमको कुछ भी नहीं देता न राम न कोई। तुम्हारा अपना ही विश्वास तथा मन की एकाग्रता की शक्ति तुम्हारा काम करती है। दुनिया अंधी है, स्वार्थ में मूर्ख बनकर लुट गई। कोई कहता है मेरी राम ने, कोई कहता है कृष्ण ने मेरी सहायता की। सब पाखण्ड का जाल है। तुम्हारी सहायता करने वाला तुम्हारा अपना मन है। गुरु ने तुमको ज्ञान तथा समझ देनी है। गुरु तुमको सच्ची बात बता देगा कि ऐसा करो। करना कराना तुमने आप है। गुरु जो कहता है उस पर अमल करो कि अगर तुम संसार में सफलता चाहते हो तो अपने मन को इकट्ठा करो और जो बासना रखते हो उसको रखो तो तुम उन्नति करोगे। मेरे विचार में मैंने आपको समझाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। अमल करना तुम्हारा काम है। Lecture देने में व शब्द गाने से कोई लाभ नहीं। अमल करना सीखो। प्रातः सायं बैठकर मन को मस्तक के बीच इकट्ठा करो, रूप बनाया करो, मूर्ती बनाया करो। मैं नहीं कहता कि तुम राधास्वामिये हो जाओ। जिस धर्म के हो जिस पंथ के हो उसके

अनुसार अपने आपको Adjust करो तुम्हारा काम हो जा
तुम्हारी दुनिया बन जायेगी। अगर सच पूछो तो यदि प
चाहते हो तब भी यहाँ मस्तक के बीच ध्यान करके (यही ओ
स्थान है) परमार्थ की चाह करके करो तब परमार्थ भी बन जाएगा
यह कुञ्जी है। मन तुम्हारा साथी है अगर तुम आगे जाना चाहते
हो फिर भी तुम्हें त्रिकुटी में जाना पड़ेगा। जैसा तुम्हारा ख्याल है
वैसा मिल जायेगा। मैंने अपने आद घर को ढूढ़ने व जाने का मार्ग
ढढ़ा था अतः मैं ऊपर चला जाता हूँ और वहाँ पहुँच गया। मैंने जो
ख्याल किया मेरा वो ख्याल पूरा हो गया। अब फँसा हुआ हूँ।
अमेरिका जा रहा हूँ। क्योंकि मैंने प्रण किया था कि अपना अनुभव
कह जाऊँगा। वह जो मैंने सोचा हुआ था कि अनुभव कह जाऊँगा
वो अपना कर्म काटता हूँ। जैसा ख्याल वैसा हाल, जैसी मति वैसी
गति, जैसी करनी वैसी भरनी।

तम आये हो तुम गृहस्थी हो। गृहस्थियों को कई प्रकार के कष्ट
आते हैं। एकान्त में बैठकर त्रिकुटी में ध्यान करो अपने अन्तर में
सच्चे दिल व सच्ची चाह से माँगो मिल जायेगा। मेरी अजमाई हुई
बात है। लोगों को अजमाने से मिलता है। यह कानपुर से अमरनाथ
सच्च देवा आया हुआ है। इसके अन्तर तीन वर्ष पहले मेरा रूप
प्रकाश में स्वप्न में आया क्यों आया ? यह कहता था कि मैं देवी
देवताओं की भक्ति करता था और सदैव ध्यान में चाहता था कि
मुझे कोई अच्छा रास्ता बताने वाला मिल जाय। क्योंकि इसकी
प्रबल चाह थी तथा ध्यान करता है अतः इसकी चाह ने जहाँ से
इसको यह चीज मिलनी थी प्रकृति ने इसको मेरे रूप में बता दिया।
यह कुञ्जी है जो मैं बताना चाहता हूं तुम्हारे मन के अन्दर सब
तुम्हारे कर्म हैं तुम अपनी गति को आप बताओ। गुरु ने तुमको
केवल मार्ग बताना है। भटका किस लिये खाते हो। देवी के आगे
मेरे आगे मस्तक नवाते हो। क्या मत्थे टेकने से वस्तु मिल जायेगी।

यह हमारा मत्था टेकना हमारे समाज की सभ्यता है, यह दूसरी बात है। मगर यदि इस विचार से मत्था टेकते हो कि तुमको वह चीज दे देगा, तुम्हारी गलती है। जो चीज तुमको मिलनी है तुम्हारे अपने अन्तर से मिलनी है। असली पूजा की चीज अपने अन्तर है इसलिए इस मन को अच्छे ख्याल दो, प्रेम के भक्ति के तथा नेकी के विचार दो सारा दिन काम करो तथा सतसंग में जाने से अपने जीवन तथा अपनी दुनिया में बदल दो। जीवन कैसे बदलेगा। जो नसीहत करता हूँ उस पर अमल करने से तुम्हारा जीवन बदलेगा बस। गुरु मिले तो कहा कमाना हो।

अगर सतसंग से बात ठीक प्रकार समझ में आ जाये तो अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं। मन को ही बदलना है। तुम उसके हो रहो वो तुम्हारा हो जायेगा। पत्नी बच्चों से मिलो केवल मन को राजा जनक की तरह वहाँ रखो। यह सब बन्धन है। इसके रूप को समझकर दिल वहाँ रहे तथा घर में बैठकर योग कमाओ।

सबको राधास्वामी।

—+—

धन्यवाद

श्रीमती गीतादेवी सर्राफ, भीलबाड़ा राजस्थान ने अपने सुपुत्र चेतन आनन्द के शुभ विवाहोपलक्ष में 'मनुष्य बनो' को ५१) रु० भेंट स्वरूप भेजे हैं। मालिक से कामना है कि वर-वधू को समृद्धि-शाली तथा दीर्घजीवी बनाये।

(२) ५) रु० श्री मोटूमल जोतवानी मदरा जिला गंगानगर (राज०) ने अपनी पुत्री पूनम के जन्म दिन पर 'मनुष्य बनो' को भेजे हैं। मालिक से कामना है वह बेटी पूनम की चिर आयु करे।

असार संसार

लेखक—कुबेरनाथ श्रीवास्तव

ससार की आशा—कहते हैं कि एक सुगा पंछी चारे की खोज में उड़ता हुआ एक सेमर के वृक्ष पर जा बैठा तो देखा कि उस पर लाल-२ रंग के फूल सुशोभित हैं वह प्रसन्न हो गया उसके समझ में यह बात आई कि जब इस वृक्ष के फूल इतने सुन्दर हैं तो इन फूलों का फल कितना स्वादिष्ट होगा। आवो इनको सतर्कता से सेवें जब फल लगेगा तो हमारे की खोज समाप्त हो जायेगी। वह लोलित होकर बड़े चौकसी से सेमर के फूलों की रखवाली करने लगा। समय आया जब फूल मुरझाने लगे, ज्यों ज्यों फूल मुरझाने लगे त्यों त्यों उसके प्रसन्नता की सीमा बढ़ती गई। जब फूल सूखकर गिर गये तब फल निकल आये। उस पर सुवा ने चोंच मारा तो कच्चा पाया सोचा कि अभी फल कच्चे हैं अतः इनकी रखवाली की अभी आवश्यकता है कुछ दिनों बाद जब पक जावेंगे तो खाने योग्य हो जावेंगे, महीनों सेवन करने के बाद उसने देखा कि फल के छिलके सूख गये हैं और फल खाने योग्य हो गया है बड़ी साबधानी से उसने फल पर प्रसन्नता पूर्वक चोंच मारा तो फल फट गया तो क्या देखता है कि बजाय गूदा के उससे भुवा निकल रहा है और आकाश में उड़ रहा है तथ उसके खाने की कोई चीज नहीं है वह निराश होकर उड़ गया और अपनी मूर्खता पर पछताने लगा। जो मनुष्य सुवा पछी की भाँति संसार रूपी सेमर से प्रेम करता है और उसमें लम्पट हो जाता है उसकी यही दशा होती है।

यह संसार क्या है? मरुथल भूमि है जिसपे गर्मी के दिनों में पियासे हुये मृग को मानसिक झील, कमल के फूल पत्ते, हरियाली और बगुले दिखाई देते हैं। मृगा उस झील के किनारे (मानिकट ही दिखाई देती है) पहुंचने के प्रयास मे यथा शक्ति तेजी से छलागे मारता हुआ दौड़ते दौड़ते अपनी जान गवां देता है मगर मानसिक झील को मरुस्थल भूमि मे नहीं पाता। दाता दयाल साहिब ने इसका चित्र निम्न अंकित नज्म में इस प्रकार खींचा है—

(१) आये किस जा से कहां पर आ गये—थे अगर सरयाह क्यों भरमा गये।

(२) दिल लगी को दिल दिया दिल छीन गया—दिल में दिल से खुद व खुद शर्मा गये ।

(३) दे के दिल पछताते हैं अब रात दिन जो किया था उसका फल अब पा गये ।

(४) बे तरह लूटे गये गारत हुये, जिन्दगी से अपने अब अकुता गये ।

(५) कौन है अपना यहाँ कोई नहीं—धोखा खाया सबसे धोखा खा गये ।

(६) उम्र गुजरी सारी खेल और कूद में, अपनी हालत देखकर थर्रा गये ।

(७) 'ज़ाहित' अपना नूरे बातिन खो गया अब्रे तीराकार उस पर छा गये ।

उवाई

बेगरज है जात अपनी—बेगरज रहते हैं हम ।
बेगरज है जात अपनी—ले गरज कहते हैं हम ॥

संसार का स्वाद—एक कुत्ते को भूख सताने लगी । वह खाने की खोज में चल पड़ा । ढूढ़ते २ एक हड्डी दिखाई पड़ी । जब उसने हड्डी को जीभ से चाटा तो उसमें कोई माँस नहीं मालूम हुई मगर उसके नाक में माँस की गन्ध आई—सोचा कि माँस हड्डी के भीतर है तभी तो माँस की गन्ध आ रही है उसने हड्डी को मुँह से उठा लिया और एक सुरक्षित स्थान पर आकर उसको चूसने लगा । चूसते २ हड्डी की रगड़ खाकर उसके जीभ से रक्त निकलने लगा । इधर हड्डी से माँस की गन्ध तो आ ही रही थी उधर अपने ही रक्त का स्वाद मिलना आरम्भ हुआ । यह प्रतीत करके कि हड्डी के भीतर से मांस का स्वाद आ रहा है वह बल पूर्वक हड्डी को चूसने लगा । उसकी जीभ दुखने लगी और हड्डी चूसने से असमर्थ हो गई इस कारण हड्डी से अपनी जीभ खींच लिया तो क्या पाता है कि जीभ से रक्त निकल रहा है । अब उसको ज्ञात हुआ कि माँस का स्वाद हड्डी के भीतर से नहीं आ रहा था बल्कि वह उसके अपने ही जीभ के रक्त का स्वाद था । इस दृष्टि कोण से संसारिक पदार्थ हड्डी तुल्य है इसके भोग विलास में लम्पट होने वाले व्यक्तियों की संसार का स्वाद इसी प्रकार का प्राप्त होता है ।

मनुष्य को जो आनन्द का अनुभव संसार के भोग विलास से होता है वह

सांसारिक पदार्थों से सम्बन्धित नहीं है बल्कि वह उसी के मन के वासना कल्पना है। जब कभी तुम बीमार हो जाते हो तो क्या तुमको सांसारिक वस्तुओं से वह आनन्द प्राप्त होता है जो जो आनन्द तुमको स्वस्थ अवस्था में प्राप्त था। तुम बीमार हो जाते हो तुम्हारी जुबान फीकी पड़ जाती है तुम कितना ही स्वादिष्ट भोजन खाओ क्या तुमको खाने का स्वाद भली भाँति मिलता है इससे सिद्ध होता है कि तुम्हारे अन्तर जिस मात्रा में आकर्षण शक्ति है उसी मात्रा में तुम सांसारिक वस्तुओं से प्रसन्नता वो आनन्द प्राप्त करते हो। अतः जो प्रसन्नता, आनन्द व शान्ति तुमको प्राप्त होती है वह तुम्हारे अन्तर से निकलती है और वह बाहर की वस्तु से टकराकर अन्तर में प्रवेश करने पर लाभदायक होती है अतः प्रसन्नता, आनन्द वो शान्ति तुम्हारे अन्तर से निकलती है। वह बाहर नहीं है। दादादयाल इसका समर्थन इस प्रकार करते हैं—

खुशी दिल में तुम्हारे है, खुशी के[1] तुम मसब्बर हो,
खुशी के मुगहिर[2] वो मुगहिर, खुशी के माह[3] वो पेकरहा[4]।
तुम्हारे है गलतह बहकी वाद रहा,
खुशी की जुस्तजू[5] बाहर नहीं करते, कभी घना खुशी अन्दर।
मेरा दिल में समा जावो चमक उठो बस ऐं गावित[6] खुशी के,
आसमा पर आप तुम शम्शे[7] मन उब्बर[8] हो।

१ चित्रकार, २ प्रगट करना, ३ चांद, ४ सितारे, ५ खोज, ६ चतुर ७ चमकीले, ८ सूरज।

असार संसार—संसार क्या है ? यह एक सराय है जहां यात्री जब बाहर घूमने फिरने जाते हैं तो अपना सामान रखकर दो चार या दस बीस दिन

ठहर कर विश्राम करते हैं और फिर यात्रा समाप्त करके जहाँ से आये थे वहाँ लौट जाते हैं। भिन्न भिन्न देशों के यात्री सराय में आते जाते हैं वह लोग एक दूसरे से वार्तालाप करते हैं और दिल बहलाकर प्रसन्न होते हैं, आपस में मेल जोल करते हैं और एक दूसरे की सहायता करते हैं मगर उनको मगर उनको यह ख्याल बना रहता है कि हम दूसरे देश के बासी हैं। हमारा यहाँ अपना कोई नहीं है यात्रा करके जहां से हम आये थे वहाँ लौट जाना है। जब वह अपनी राह लेते हैं तब सराय यात्री और मेल मिलाप इत्यादि सब भूल जाते हैं इनको कोई हर्ष वो शोक प्रभावित नहीं करता है। मगर तुम इस सराय रूपी संसार में आकर जिस स्थान से आये हो उसको भूल जाते हो और समझ बैठते हो कि हमारी सृष्टी वो परलय इस संसार ही तक सीमित है जो कुछ है वह संसार ही है इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है तुम्हारा यह वचार किसी अंश तक हम मानने को तैयार हैं मगर क्या कभी तुम्हारा ध्यान इस ओर भी आकर्षित हुआ है कि संसार स्वयं कहाँ से उत्पन्न हुआ है? इस संसार को प्रकृति ने रचा है और यह उसी के आश्रित है जब यह स्वयं आश्रित है तो तुम्हारी सहायता क्या कर सकती है। इसलिये तुम समझ लो कि सराय के यात्री की भाँति तुम इस संसार में हो तुमको अवश्य एक न एक दिन वहाँ से चले जाना है।

रेल, जहाज व वायुयान द्वारा यात्रा करते समय भी तुम भिन्न भिन्न स्थानों के यात्रियों को अपने साथ पाते हो और उनके साथ भी सराय के यात्रियों की भाँति व्यवहार करते हो। जब यह किसी स्टेशन पर रुक जाती है तो पुराने यात्री उतर जाते हैं और नये यात्री चढ़ जाते हैं। मगर तुम्हारी प्रसन्नता ज्यों की त्यों बनी रहती है समय आता है जब तुम्हारे इच्छित स्टेशन पर सवारी ठहरती है और तुम स्वयं उतर जाते हो। क्या तुमको किसी प्रकार का विछोह या मोह व्यापता है ? नहीं।

रात के समय भिन्न–भिन्न प्रकार के अनेक पक्षी एक ही वृक्ष पर बसेरा लेते हैं और कोलाहल करते हैं जिससे वह स्थान सुशोभित हो जाता है। प्रातः काल वह जहाँ के तहाँ उड़ जाते हैं। और वह स्थान सूना पड़ जाता है।

क्या पक्षी को सायं काल बसेरा लेने और प्रातःकाल उड़ जाने से मोह बिछोह भासता है ? नहीं ।

तुम्हारे अनगिनत पूर्वज इस संसार में जन्म लिये, अपने सन्तान कुटुम्बियों को परिश्रम करके बड़े लाड़ प्यार से पालन पोषण किया और संसार से चल बसे । क्या उनको अपने संतान व कुटुम्बियों की कोई चिन्ता है ? नहीं ।

क्या तुम बता सकते हो कि तुम्हारे कितने पूर्वज (जब से संसार प्रगट हुआ) स्वर्गवास कर चुके हैं ? नहीं । अगर आकाश वह शरीर धारण करके तुम्हारे सामने प्रगट हों तो सिवाय माता, पिता, ध्रुव दादा के किसी अन्य से मिलना तुम पसन्द करोगे ? नहीं । सब पूर्वजों को घूमकर देखने ही में तुम्हारी आयु बीत जावेगी । प्रेम करना तो दूर की बात रही । तुम्हारी व तुम्हारे परिवार की दशा ऐसे दो पथिकों की है जिनका दो स्थान पर जाना है उसके हेतु तुम दोनों दो मार्ग पर चल रहे हो । आगे चलकर दोनों मार्ग एक हो जाते हैं । और तुम दोनों पथिक मिल जाते हो । दोनों में प्रेम व प्रीत हो जाता है और हर्ष पूर्वक यात्रा समाप्त हो रही है । तुम दोनों उत्तर दिशा को जा रहे हो । चलते चलते वह मार्ग उस सड़क से मिल गया जो पूरब पश्चिम को जाती है । तुमको पुरब जाना है तुम्हारे परिबार को पश्चिम जाना है । तुम दोनों ने एक दूसरे को नमस्कार किया और अपनी २ राह ली । बताओ कौन किसका हुआ ।

इसको अब दूसरी प्रकार समझो-तुम जीवन की सैर करने के लिये संसार की बाटिका को चल पड़े । रास्ते में माता व पिता के रूप में एक स्त्री व एक पुरुष मिले उनके साथ आगे बढ़े तो धर्म पत्नी के रूप में एक युवती मिली जिससे सन्तान व परिवार उत्पन्न हो गये । तुमने वाटिका की भली भाँति सैर करली, जी भर गया । इन सबको यानी माता, पिता, स्त्री परिबार व वाटिका को छोड़कर जहाँ से आये थे वहाँ चल पड़े । तुम बाजार जाते हो वहाँ सजी हुई दुकाने व भीड़ भाड़ देखकर प्रसन्न होते हो और इच्छित वस्तु मोल लेकर घर लौट जाते हो और बाजार व भीड़ भाड़

भाड का ध्यान लेश मात्र भी नहीं रहता । बताओ तो सही कि तुमने किसका साथ ग्रहण किया और किसका साथ त्याग किया । तुमको किससे मोह हुआ और किससे बिछोह हुआ ? किसी का नहीं यह तो प्राकृतिक रूप से था ।

स्मरण रहे कि अगर तुमको इस स्थान का पता लग जावे जहाँ से आये थे और उसका मार्ग पा लिया तो लौटते समय अपने सांसारिक सम्बन्धों को छोड़ने में प्रसन्नता होगी और तुम हर्ष पूर्वक सुगमता से अपने लक्ष पर पहुंच जाओगे । मगर तुम्हारे सम्बन्धी जिनको अपने आने के स्थान का पता नहीं है और न उसका मार्ग जानते हैं वह भव वाटिका की सैर से अकुता जायेगे और छोड़ना चाहेंगे तो छोड़कर लक्ष तथा उसका मार्ग नहीं जानने के कारण रास्ते में भटक जावेंगे और संसार की वाटिका में आते जाते रहेंगे । जिसको आवागमन कहते हैं ।

अगर तुम हमारे आशय को उपरोक्त बातों द्वारा समझ गये तो तुमको भली भाँति अनुभव हो जावेगा कि तुम्हारा प्रेम व सम्बन्ध इस असार संसार के धन, धाम, माता पिता, सन्तान व परिबार इत्यादि से इसी प्रकार का कल्पित है । इनका साथ उसी समय तक है अब तुम इनके साथ एक मार्ग पर चल रहे हो इनमें से जब कोई उस स्थान पर पहुंच जावेगा जहाँ उसके लक्ष पर पहुंचने का मार्ग इस मार्ग से मिलता है वह तुम्हारा साथ छोड़कर अपनी राह लेगा ।

संसार से विवेक — जो विद्यार्थी समझ बूझकर पढ़ने लिखने में निपुण होते हैं वह सतर्कता से अपना पाठ अध्ययन करके पुस्तक, शिक्षक से विद्यालय को छोड़कर अपना आदर्श प्राप्त करके अलग थलग हो जाते हैं । प्रतिकूल दशा वाले विद्यार्थी पुस्तक शिक्षक व विद्यालय के फेर में पड़कर लम्पट हो जाते हैं । ठीक यही दशा उन मनुष्यों की है जो संसार के त्रिशनाओं में ग्रसित है इनमें से कुछ तो ऐसे व्यक्ति हैं जो समझ बूझ वाले विवेकी हैं वह संसार को असार समझकर इसमें रहते हुये और इसका भोग भोगते हुये उसके सुख दुख से अपने स्वय को मुक्त रखते हैं । बहुत व्यक्ति ऐसे हैं जो संसार को सार समझकर उसके सुख दुख में लम्पट होकर आवागवन के फन्दे में फँस जाते हैं

ऐसे व्यक्ति जब सुख दुख भोगते भोगते शिथिल पड़ जाते हैं तब उनको प्रत
होता है कि संसार, असार व कल्पित है यह उनके वासना की छाया है
इससे उपराम हो जाते हैं और उनको विवेक उत्पन्न हो जाता है वह इ
समझ बूझ वाले विद्यार्थी की भाँति मुक्त हो मान चाहते हैं।

यह तो तुमको मालूम ही है कि प्रकृति ईश्वर की बासना या छाया है और संसार मनुष्य की बासना या छाया है छाया से छाया व असार से असार ही प्रगट होगा। ईश्वर का कोई रूप रंग व रखा नहीं है उसका कोई चित्र नहीं बना सकता। इसी प्रकार संसार का कोई रूप रंग व रेखा नहीं है। इन दोनों को जिसने जैसा मान लिया वैसा व्यापने लगा। जिसने लाल रंग चश्मा पहिन लिया उसको ईश्वर व संसार लाल दिखाई देने लगा, जिसने काले रंग का चश्मा पहिन लिया उसको काला दिखाई देने लगा या यों समझ लो कि अगर तुम सुन्दर हो तो दर्पण में सुन्दर दिखाई पड़ोगे और अगर कुरूप हो तो कुरूप दिखाई पड़ोगे। दर्पण तो स्वच्छ है वह न सुन्दर है और न कुरूप है, इसको सन्त तुलसीदास इस प्रकार कहते हैं—

जाकी रही भावना जैसी, हरि मूरत देखी तिन तैसी।

ईश्वर व संसार की अस्तिवत अवश्य है। इससे तुम इनकार नहीं कर सकते मगर इनकी अस्तिवत क्या है कोई वर्ण नहीं कर सकता। तुमने ईश्वर को दयालू, कृपालू समझ लिया वह दया करते हुये प्रतीत होता है। तुमने उसको काल व कराल मान लिया तुमको वह दुख देने वाला प्रतीत होने लगा यही दशा संसार की है जिसने इसको स्वर्ग समझा उसको वह सुखदाई है। जिसने इसको नर्क समझा उसको वह दुखदाई है मगर संसार न तो स्वर्ग है और न नर्क है वह दोनों से न्यारा है वह लड़कों के वास्ते लड़का जवानों के वास्ते जवान, वो बुढों के वास्ते बुढा है जैसी दृष्टी वैसी सृष्टी की कथा है सन्त तुलसीदास का कथन है।

सुधा वृष्टि भई दोऊ दल माहीं, जिय भालु कपी निष चरना ही।

कमल की रहनी —समय आता है जब किसी व्यक्ति का जी संसार का दुख सुख भोगते २ थक जाता है। उसको संसार असार व स्वपन तुल्य भासने

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

भासने लगता है। उसको उदासीनता आ जाती है और वैराग उत्पन्न हो जाता है। वह दुख सुख दोनों से मुक्त होना चाहता है और बाहरमुखी से अन्तरमुखी होने के लिये आँखें बन्द कर के अपने अन्तर में प्रवेश करने धुन में लग जाता है।

यद्यपि उसका आकर्षण बाह र से टूट जाता है मगर वह अपने अन्तर में आकर्षित होने का मार्ग ज्यों का त्यों नहीं पाता। तुम देखते हो कि संसार के बाहरमुखी विद्या तथा अन्य कार्य के सिखने में गुरु की जरूरत पड़ती है तो अन्तरमुखी विद्या के ग्रहण करने हेतु तो अन्तरमुखी गुरु की प्राप्ती अति आवश्यक है। उसकी व्याकुलता दिन प्रति दिन तीव्र होकर गर्म होती चली जाती है और ज्वाला का रूप धारण कर लेती है। प्रकृति में माँग व पूर्ती का नियम अटल है जहाँ कोई व्यक्ति माँग की सीमा समाप्त कर देता है वहाँ पूर्ती खड़ी हुई उसकी राह देखती रहती है और उसकी माँग का रूप पूर्ती का रूप धारण कर लेती है। किस प्रकार से ?

प्रकृति उसके जैसे शिष्य को किसी दूसरे व्याकुल व्यक्ति को अन्तरमुखी का मार्ग दरसा कर और अन्तरमुखी बनाकर गुरु के रूप में पहिले ही से प्रगट कर रखती है। गैस चुम्बक लोह को आकर्षित कर लेता है तथा सर्दी गर्मी को आकर्षित कर लेती है वैसे ही एक योग्य व सच्चा गुरु अपने सच्चे शिष्य को नियमानुसार प्राप्त होकर उसको अन्तर का मार्ग दरसा देता है। ऐसे गुरु की महिमा सन्त तुलसीदास इस प्रकार गाते हैं —

गुरु बिन भौ निधि तरे न कोई, जो विरंचि शंकर सम होई।

इसका भावार्थ यही है कि बिना सच्चे अन्तरमुखी गुरु के कोई सच्चा शिष्य अन्तरमुखी नहीं बन सकता और अपने स्वयं व निज स्वयं को साक्षात-कार नहीं कर सकता।

ऐसे गुरु के दरबार में सच्चे दीन व अधीन बनकर आओ उनकी सेवा तन मन व धन से करो ताकि उनके संस्कार ग्रहण करने का अधिकार तुम में प्राप्त हो। वह तुम्हारे संस्कार व अधिकार की निरख परख करके समया-नुसार अपनी भक्ति से तुमको अन्तरमुखी बनने का मार्ग व साधन बता देंगे।

उस मार्ग पर चलते हुए साधन करो और कुछ दिन हितचित से उनकी व सतसंग करो। तुम गुरु का संस्कार ग्रहण करके स्वयं व निज स्वय मे प्रबेश करके स्वयं गुरु का कार्य करने लगेगा। और गुरु का ध्यान जाना रहेगा।

पारस और सन्त में यह अन्तर तू जान,
वह लोहा कंचन करे यह करें आप समान।

यह बात ध्यान में रहे कि यद्यपि तुम्हारे शारीरिक रूप बन्धु गुरु से छूट गया मगर आत्मिक सम्बन्ध मत छोड़ना। उनका आदर, सतकार, मान व प्रतिष्ठा पहिले से अधिक बनाये रखना। इसको भूलकर कृतिघ्न मन हो जाना अगर ऐसा न ही करोगे तो तुम्हारी कमाई लाभदायक नहीं होगी। कबीर साहेव कहते हैं।

कामी तरे, कोधी तरे पापी तरे अनन्त।
आन उपासक कृतघ्न जन तरे न नाम रटन्त।

ऐसी अवस्था प्राप्त किये हुये मनुष्य का आकृष्ण देह, मन व आत्मा से छूट जाता है। उसको कोई वासना नहीं रहती। मगर चूँकि वह देह, मन व आत्मा में निवास करता है सुभावत: वासना रहित आकृष्ण रहता तो अनिवार्य है। वह सब कार्य प्राकृतिक रूप से करता हुआ निष्काम कर्म करता हैं और अपना जीवन वैसे ही व्यतीत करता है जैसे सूरज चाँद व नदी इत्यादि दूसरों के लिये कार्य करते हैं इसको प्रारब्ध कर्म कहते हैं। उसको न तो अपने कार्य की सफलता पर प्रसन्नता हैं और न असफलता पर दुख है। परन्तु वह अपना कार्य धीरज, सतर्कता व परिश्रम से अवश्य करता है मगर अपने २ कार्य के प्रभाव से बंचित रहता है।

जैसे कमल पानी में जन्म लेता है, पानी में निवास करता है पानी से ही उसका पालन पोषण होता है मगर पानी से प्रभावित नहीं होता पानी चाहे कितना ही बढ़ता जावे मगर कमल सदैव उसके ऊपर रहेगा। पानी उसको डुबा नहीं सकता अगर पानी उसके किसी अंग पर चढ़ जावे तो पारे की भाँति छलक कर गिर जावेगा। सन्त पलटूदास इस प्रकार कहते हैं।

ना जीवन की खुशी है, पलटू मुवे न सोच ।
ना काहू से दुष्टता ना काहू से राच ॥

इस दशा को कमल नीर की रहनी कहते हैं ।

शून्य—तुम १, २, ३, व ४ इत्यादि गिनती गिनते हो । जानते हो इनकी उत्पत्ति कहाँ से होती है इनकी उत्पत्ति शून्य से होती है । सड़क पर लगे हुये किलोमीटर के पत्थरों को देखो । पहले पत्थर पर ० (शून्य) लिखा है तब दूसरे पत्थर पर १ लिखा है । तुम जोड़ जोड़ते हो जब वह अपनी सीमा समाप्त कर देता है तो कहते हो हाथ लगा शून्य जोड़ समाप्त हो गया । इस प्रकार यह संसार असार है यहाँ सब कुछ शून्य ही से प्रगट हुआ और सब कुछ शून्य है । चाहे राजा हो या रंक दोनों के हाथ शून्य ही लगता है तुम्हारा सब करना धरना, कहना सुनना, और कल्पना करना शून्य व सपना है, सुख व शान्ति बाहर ससार में नहीं है वह तुम्हारे अन्तर है संसार उसके प्राप्ति का अस्त्र है । बाहरमुखी मत बनो अन्तरमुखी बनो । इसकी मुक्ति सीखो और साधना करके अपने अन्तर में सुख आनन्द व शान्ति प्रगट करो । हमने बहुत कुछ कहा—देखता है कि इसको ग्रहण करके तुम कितना लाभ उठाते हो । गुरुदेव तुम्हारी रक्षा करे ।

राधास्वामी !

—×—